शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 फरवरी 2013

सम्पादकीय

शब्द – ब्रह्म

विनोबा

संस्कृत भाषा का आरंभ वेद–वाणी से हुआ। वह आरंभ ही कितना गंभीर है – जैसे कोई नदी, गंगा गहरी गुफा से निकलती है, ऐसी गूढ़ गुफा से, जहां पहुंचना मुश्किल है और पहुंचने पर वहां से वापस लौटने की इच्छा ही न हो, इतना रमणीय दृश्य हो, इस तरह का संस्कृत का उगम–स्थान है। ऋग्वेद वाणी का रस माना जाता है।

प्राण, वाणी और मन, तीनों के संयोग से शब्द बनता है। इसलिए कहा जाता है वेद प्राणमय, इंद्रियमय और मनोमय है। शब्द–ब्रह्म यानी वेद। वह अत्यंत दुर्बोध है, क्योंकि उसका अर्थ ढंका हुआ है। संस्कृत में वेद को 'छंदस्' भी कहते हैं, यानी ढंका हुआ। फिर उसका कोई पार भी नहीं, 'अनंतपारम्'। वह 'गंभीर' और 'दुर्विग्राह्य' है। ...वेद केवल पुराना ग्रंथ नहीं है, 'शब्द' है। हम जो भी शब्द उपयोग करते हैं, वे सबके सब पुराने हैं। वेद ने हमें जो शब्द दिए हैं, भाषा दी है, उसी को हम आज इस्तेमाल करते हैं। पदार्थवाचक, वस्तुवाचक शब्द होते हैं, वे नये होते हैं। जैसे मोटर, पेंसिल इत्यादि। बाकी भाववाचक शब्द – चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार, सबके सब पुराने शब्द हैं।

जो भी शब्द बनता है, वह 'वेद' है। वेद यानी शब्द की बनावट। आश्चर्य की बात है कि हम एक भी नया शब्द नहीं बनाते। आपको भले ही मौलिक चिंतन करना हो, अगर आपको कहा जाए कि पुराने शब्दों का उपयोग किये बिना चिंतन करें, तो आपको मौन ही रखना पड़ेगा। चिंतन ही नहीं होगा। जबतक बोलते रहेंगे, सोचते रहेंगे, पुराने शब्द का ही इस्तेमाल होगा। बाइबिल में भी आता है, 'इन दि बिगनिंग वॉज दि वर्ड' – विश्व के आरंभ में शब्द था। शब्द आद्य था। शब्द का आधार लेना हमारे लिए अत्यंत स्वाभाविक है।

शब्द परंपरा

हमारे जीवन की जो अंतःसृष्टि है, वह शब्दों की है। शब्द हमारे रत्न हैं और शब्द ही हमारे शस्त्र है। इससे बढ़कर कोई रत्न नहीं हो सकते और इससे बढ़कर कोई शस्त्र नहीं हो सकते। प्राचीनकाल से आज तक शब्दों की जो अखंड धारा बहती आयी है, वह बहुत मनोरम सृष्टि है। हमारी सब भाषाओं में वे शब्द घुलमिल गये हैं।

मेरा कई भाषाओं का अध्ययन है, हिंदुस्तान की ओर बाहर की भाषाओं का भी। मैं कह सकता हूं कि दस हजार साल पहले की, सिवा संस्कृत के, इतनी पुरानी दूसरी भाषा नहीं है। संस्कृत का प्राचीनत ग्रंथ ऋग्वेद है। उसके पहले मंत्र में जो शब्द है, वे जैसे के वैसे आज भी हिंदी, मराठी, बंगला, गुजराती आदि में इस्तेमाल किये जाते हैं। पहला ही मंत्र है 'अग्निमिळे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।' अग्नि, पुरोहित, देव, यज्ञ, ये शब्द ज्यों–के–त्यों इन भाषाओं में चलते हैं। ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसमें ग्रीक, लैटिन के शब्द ज्यों–के–त्यों इस्तेमाल किए जाते हों। लेकिन हमारी भाषाओं में करीब पचास प्रतिशत शब्द ऋग्वेद के जमाने से वैसे–के–वैसे चलते आये हैं। यह सारा कैसे चला ? इसके पीछे अहिंसा की प्रक्रिया है। पुराने शब्दों को नया अर्थ देते चले जाना, अहिंसक क्रांति का विचार है। क्रांति बिना किसी शब्द से नहीं होती। पुराने शब्दों को नहीं छोड़ना, उसे कायम रखकर

ISSN 2320 – 0871
17 फरवरी 2013

उसमें नया अर्थ डालते जाना, यह प्रक्रिया दूसरे देशों में नहीं है। वहां पुराने शब्दों का खंडन करते हैं, उन्हें तोड़ते हैं। तो, हिंदुस्तान में जो विचार–क्रांतियां हुईं, उनकी अपनी एक स्वतंत्र प्रक्रिया थी। वह यह कि पुराना शब्द तो कायम रहे, उसमें नये अर्थ भर दें। यानी नये–नये अर्थों की उस पर कलम चढ़ाते चले जायें। पुराने शब्द की ताकत और नये अर्थ की मधुरता, दोनों मिलकर एक नया ही विचार हिंदुस्तान को मिलता गया। शब्द पुराने कायम रहते गये और नये–नये अर्थों की प्रेरणा जन–समाज को मिलती गयी। यह अहिंसक प्रक्रिया थी और इसी प्रक्रिया से हिंदुस्तान आगे बढ़ता रहा। इस तरह की प्रक्रिया से हिंदुस्तान का सारा शब्द–संसार बना है। इससे हमें बहुत ताकत मिलती है। वेद–चिंतन : विनोबा साहित्य खण्ड 1